राजकोषीय घाटे का संक्षिप्त इतिहास

drishtiias.com/hindi/printpdf/a-brief-history-of-fiscal-deficit

सन्दर्भ

- करीब तीन दशक पहले की बात करें तो देश में बहुत कम लोगों ने राजकोषीय घाटे का नाम सुना होगा। इस शब्द का आधिकारिक तौर पर प्रयोग पहली बार वर्ष 1989-90 की आर्थिक समीक्षा में किया गया था।
- वर्ष 1991 के आर्थिक संकट के बाद स्थिरीकरण की प्रक्रिया और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के कार्यक्रमों के बीच इसकी चर्चा और भी अधिक होने लगी। निश्चित तौर पर हमारी सरकार ने उस वक्त इसे गंभीरता से नहीं लिया था लेकिन आज वक्त बदला है और आज राजकोषीय घाटे में कमी लाना सरकार की आर्थिक नीतियों का एक प्रमुख लक्ष्य है। अतः बीते 35 वर्ष के दौरान देश में राजकोषीय घाटे के दायरे की समीक्षा करना काफी जानकारीपरक साबित हो सकता है।

क्या है राजकोषीय घाटा ?

- सरकार की कुल आय और व्यय में अंतर को राजकोषीय घाटा कहा जाता है। इससे पता चलता है कि सरकार को कामकाज चलाने के लिये कितनी उधारी की ज़रूरत होगी। कुल राजस्व का हिसाब-किताब लगाने में उधारी को शामिल नहीं किया जाता है। राजकोषीय घाटा आमतौर पर राजस्व में कमी या पूंजीगत व्यय में अत्यधिक वृद्धि के कारण होता है।
- पूंजीगत व्यय लंबे समय तक इस्तेमाल में आने वाली संपत्तियों जैसे-फैक्टरी, इमारतों के निर्माण और अन्य विकास कार्यों पर होता है। राजकोषीय घाटे की भरपाई आमतौर पर केंदीय बैंक (रिजर्व बैंक) से उधार लेकर की जाती है या इसके लिये छोटी और लंबी अवधि के बॉन्ड के जरिये पूंजी बाजार से फंड जुटाया जाता है।

बढ़ता राजकोषीय घाटा चिंता का विषय क्यों ?

> अर्थशास्त्री और अन्य नीति निर्माता अक्सर इस बात पर सहमत नज़र आते हैं कि बड़ा और निरंतर बरकरार बजट घाटा बेहतर आर्थिक प्रदर्शन के आड़े आ जाता है। ऐसे घाटों की वज़ह से निजी निवेश बाहर जाता है, मुद्रास्फीति का दबाव बनता है, भुगतान संतुलन कमज़ोर पड़ता है, वित्तीय क्षेत्र में सुधार करना मुश्किल होता जाता है और आने वाली पीढ़ियों पर कर्ज़ का बोझ बढ़ता है।

राजकोषीय घाटे के मोर्चे पर भारत का अब तक का प्रदर्शन

- आँकड़ों के मुताबिक मिश्रित घाटा, वर्ष 1980 के दशक की शुरुआत में जीडीपी के 6 फीसदी से बढ़कर दशक के मध्य तक 8 फीसदी और सन 1990-91 तक 8-9 फीसदी के स्तर पर आ गया। राजकोषीय असंतुलन बढ़ा। केंद्र सरकार को अक्सर सन 1991 के भुगतान संतुलन के संकट के लिये प्रमुख तौर पर ज़िम्मेदार माना जाता है। माना जाता है कि

पिछले वर्षों की ढीली राजकोषीय नीति उक्त संकट के लिये उत्तरदायी थी।

- विदित हो कि इस संकट ने केंद्र सरकार को राजकोषीय समावेशन की शुरुआत करने के लिये प्रेरित किया और मिश्रित घाटे को सन 1990-91 के 9 फीसदी से अधिक के स्तर से घटाकर वर्ष 1996-97 में 6 फीसदी तक करने में सफलता मिली। लेकिन यह स्थिति बहुत लंबे समय तक नहीं बनी रही। वर्ष 1996-97 के बाद के पाँच सालों में संयुक्त राजकोषीय घाटा दोबारा 9.6 फीसदी के स्तर तक पहुँच गया।
- वर्ष 2002-03 से लेकर अगले पाँच साल में इसमें भरी कमी देखी गई और यह 9.3 फीसदी से घटकर 4.7 फीसदी पर आ गया। इस दौरान राज्य और केंद्र दोनों ही स्तरों पर सकारात्मक प्रयास किये जा रहे थे। संसद ने राजकोषीय जवाबदेही एवं बजट प्रबंधन कानून को 2003 में पारित कर दिया था और सन 2004 में इसकी अधिसूचना भी जारी कर दी गई थी।
- वर्ष 2004 में 12वें वित्त आयोग की अनुशंसा के बाद ऋण राहत को राज्यों से जोड़ दिया गया, लगभग सभी राज्यों ने यही किया। राज्यों के बिक्री कर को राज्य मूल्यवर्द्धित कर में तब्दील कर दिया गया और केंद्र के सेवा कर दायरे का भी समुचित विस्तार हुआ। राजकोषीय घाटा कम होने से ब्याज दर कम होती गई। इससे निवेश और वृद्धि को बल मिला। इसका असर राजस्व पर पड़ा और घाटा आगे चलकर और कम हो गया।

चिंताजनक स्थिति

गौरतलब है कि वर्ष 2008-09 में केंद्र सरकार ने आम चुनाव से पहले जो लोकलुभावन घोषणाएँ कीं उनका असर इस वित्तीय समावेशन पर पड़ा। इस दौरान भत्तों और सब्सिडी पर जमकर खर्च किया गया। इससे हुआ यह कि वित्त मंत्री पी चिदंबरम का घाटे को 2.5 फीसदी के दायरे में रखने का लक्ष्य पूरा नहीं हो सका। परिणामस्वरूप जीडीपी की तुलना में घाटा 35 साल के उच्चतम स्तर पर जा पहुँचा। तब से लेकर अब तक हम राजकोषीय घाटे के मोर्चे पर संघर्ष कर रहे हैं।

क्या हो आगे का रास्ता ?

रोजकोषीय घाटे की भरपाई के लिये आमतौर पर सरकार भारतीय रिज़र्व बैंक से उधार लेती है या फिर छोटी और लंबी अवधि के बॉन्ड जारी कर पूंजी बाजार से फंड जुटाती है लेकिन इससे मुद्रास्फीति बढ़ने का खतरा रहता है। इसीलिये अर्थशास्त्री, राजकोषीय घाटे को बिलकुल नहीं या फिर कम से कम रखने पर जोर देते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार सरकार को राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिये अधिक उधार लेने की बजाय विनिवेश की राह पर चलना चाहिये। सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी हिस्सेदारी कम करने या बेचने की प्रक्रिया शुरू करनी चाहिये तथा देशी और विदेशी दोनों ही निवेशकों को इस ओर आकर्षित करना चाहिये।

निष्कर्ष

बीते 35 सालों में देश में केंद्र और राज्यों का मिलाजुला राजकोषीय घाटा औसतन सकल घरेलू उत्पाद का 7.7 फीसदी रहा है। केवल वर्ष 2007-08 के दौरान यह पाँच फीसदी से नीचे आया था। वर्ष 2015 में जब हमारा घाटा जीडीपी के 7.5 फीसदी था तब यूरो क्षेत्र का घाटा औसतन 2 फीसदी था। विकसित जी-20 देशों में यह 3 फीसदी और उभरते जी-20 देशों में यह 4.4 फीसदी था। विदित हो कि दुनिया का कोई भी अन्य देश हमारे इस शिथिल आंकड़े के आसपास नहीं है। पिछले कुछ समय से जहाँ राजकोषीय मोर्चे पर सुधार देखने को मिला है वहीं राज्यों के स्तर पर हमें शिथिलता का सामना करना पड़ा है लेकिन सुधारों का संघर्ष जारी है। हालाँकि, अभी हमें बहुत लंबी दूरी तय करनी है।